बरकरार है अगड़ी जातियों की गिरफ्त भारतीय मीडिया पर

जाति, लिंग और धर्म के मसले पर भारतीय मीडिया को लेकर जो हमारी आशंकाएं थीं, दो सर्वेक्षणों से उनकी पुष्टी हुई है.

योगेंद्र यादव

सप्ताहांत का दिन था, साल 2006 की गर्मियों का वक्त जब मंडल-2 के नाम से जानी गई घटना के इर्द-गिर्द उपजी सरगर्मियां पूरे उफान पर थीं- वाकया इसी वक्त का है. उच्च शिक्षा में ओबीसी को जाति-आधारित आरक्षण देने के मुद्दे पर भारतीय मीडिया जहर उगल रहा था. टेलीविजन और अखबार आरक्षण के खिलाफ अगड़ी जातियों के विरोध को जोर-शोर से पेश कर रहे थे. इस शोर में अलग-थलग पड़े हम जैसे कुछ लोग आरक्षण के विचार और जाति-आधारित नीतियों की हिफाजत की लड़ाई लड़ रहे थे. कह रहे थे कि जाति-आधारित वंचना और भेदभाव के समाधान में ऐसी नीतियां और आरक्षण एक कारगर हथियार है. और, यह लड़ाई कठिन साबित हो रही थी क्योंकि इसमें बहसों में उलझना था और ऐसी बहसों में हमारे मुकाबिल प्रताप मेहता सरीखे दोस्त हुआ करते थे.

ऐसे ही वक्त की बात है. हम लोग दिल्ली स्थित विकासशील समाज अध्ययन पीठ (सीएसडीएस) के अपने दफ्तर में बैठे थे. तब के युवा और संघर्षशील पत्रकार जितेन्द्र कुमार किंचित रोष में थे और भड़के हुए स्वर में कह रहे थे: 'मैंने इसे खुद ही देखा है. मीडिया में ब्राह्मणवादी मानसिकता वाले अगड़ी जाति के पत्रकार भरे हुए हैं.' मीडिया में गैर-द्विज जाति की आवाजों की बहाली के लिए जी-जान से जुटे पत्रकार अनिल चमड़िया भी हमारे साथ थे.

मैंने पूछाः 'लेकिन इस बात के सबूत कहां हैं?" दोनों ने धड़ाधड़ प्रसिद्ध पत्रकारों और उनके जाति के नाम गिना दिये. बात तो दोनों पते की कह रहे थे लेकिन मन ही मन मैं समझ रहा था कि जिस तरह के सबूत वे पेश कर रहे हैं उसे बतकही से ज्यादा नहीं माना जाएगा. मैंने सुझाव दिया कि क्यों ना इस आम-फहम सी समझ की सच्चाई को परखने के लिए कुछ ठोस सबूत इकट्ठे कर लिए जायें. दोनों राजी हो गये.

इस तरह शुरुआत हुई भारत में राष्ट्रीय मीडियाकर्मियों की सामाजिक पृष्ठभूमि बताने वाले सर्वे की जो मेरे जानते इस तरह का पहला सर्वे था. यों उसे सर्वे नाम देना एक ज्यादती होगीः हां, मीडियाकर्मियों की कामचलाऊ गणना उसे जरूर कहा जा सकता है. हमने अपना काम यही कोई मंगलवार या बुधवार को शुरू किया. वजह तो अब ठीक-ठीक मुझे याद नहीं रह गई है लेकिन हम लोग चाह रहे थे कि गणना के निष्कर्ष सोमवार तक जारी कर दें. तो, इस तरह उस सप्ताहांत कुछ ज्यादा ही काम आ निकला. चूंकि सैंपलिंग (नमूना तैयार करना) और आंकड़ों के संग्रह के मामले में अकादमिक मानकों के पालन का वैसा कोई खास दबाव नहीं था सो हमने लोकनीति या सीएसडीएस के साथियों को इसमें शामिल नहीं किया. हम तीनों ने अपने ही दम पर यह काम कर लिया.

अचरज की बात कि काम बड़ा आसान निकला. हम लोगों ने 40 मीडिया प्रतिष्ठानों (हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के टीवी चैनल्स तथा अखबार) की सूची बनायी और इन प्रतिष्ठानों में काम कर रहे कुछ लोगों से निवेदन किया कि वे अपने-अपने मीडिया प्रतिष्ठान के 10 संपादकीय स्तर के शीर्ष निर्णयकर्ताओं की एक सूची तैयार करें. इस काम में छोटी-मोटी कठिनाइयां भी थीं कि किन लोगों के नाम सूची में लिखे जाने चाहिए और किन लोगों के नहीं लेकिन ये मुश्किलें ऐसी नहीं थीं जो अंतिम निष्कर्ष पर बहुत ज्यादा असर डालें.

इसके बाद हम लोगों ने सूची के प्रत्येक नाम के साथ धर्म, लिंग तथा जाति से संबंधित सूचना जोड़ी. कुछ तो अपने बारे में ऐसी जानकारी देने के लिए खुशी-खुशी राजी हो गये लेकिन ज्यादातर संपादक ऐसी जानकारी नहीं देना चाह रहे थे या फिर उन्होंने जानकारी देने से बचने के लिए 'फुर्सत नहीं है' जैसे प्रचलित बहाने की ओट कर ली. ऐसे में हम लोगों ने 'सुराग देने वालों' की मदद लीः हम लोगों ने पत्रकार-बिरादरी के ऐसे लोगों से पूछा जो इन संपादकों तथा उनके परिवार-जन को इस भली तरह जानते-पहचानते थे कि उनकी जाति के बारे में बता सकें. भारत में यह कोई कठिन काम नहीं.

सप्ताहांत तक हम लोगों ने चुनिंदा 400 में से 315 मीडियाकर्मियों के बारे में एक्सेल शीट में जानकारी भर ली.

हैरतअंगेज नतीजे

नतीजे हमारी आशंकाओं की पुष्टी कर रहे थे. भद्रजन की इस सूची में दर्ज नामों में कुल 88 प्रतिशत नाम अगड़ी जाति के हिंदुओं के थे जबकि इस तबके के लोगों की संख्या देश की आबादी में 20 प्रतिशत से ज्यादा नहीं है. अकेले ब्राह्मण जाति के सदस्य, जिनकी संख्या देश की कुल आबादी में 2-3 प्रतिशत से ज्यादा नहीं, इस सूची में 49 प्रतिशत थे. सूची में कोई भी नाम ऐसा नहीं निकला जो दलित अथवा आदिवासी समुदाय का हो.

यहां गौर करने की एक बात यह कि ओबीसी, जिनकी तादाद देश की आबादी में 45 प्रतिशत बतायी जाती है, शीर्ष स्तर के मीडियाकर्मियों की इस सूची में मात्र 4 प्रतिशत थे. इस तरह दृश्य बिल्कुल उलटे पिरामिड का बन रहा था: अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा ओबीसी जिनकी तादाद देश की आबादी में 70 फीसद से ऊपर है, राष्ट्रीय मीडिया

में शीर्ष स्तर के वैसे पदों पर जहां से निर्णय लिए जाते हैं, मात्र 4 प्रतिशत थे. हमने आमफहम गैर-बराबरी की सूचना देने वाले कुछ और तथ्य भी दर्ज किये, जैसे: महिलाओं की संख्या सूची में मात्र 16 प्रतिशत थी और मुस्लिम समुदाय के मीडियाकर्मियों की संख्या सूची में केवल 3 प्रतिशत थी.

हमने इस सर्वे के नतीजे एक प्रेस-विज्ञप्ति के रूप में जारी किये. नतीजों को प्रकाशित करने में अनिच्छा दिखायी जायेगी, यह बात जो जाहिर ही थी तो भी प्रेस-विज्ञप्ति के आधार पर कुछ खबरें बनीं. ऐसी खबरों को छापने वाले में 'द हिन्दू' सरीखे मुख्यधारा के भी अखबार थे. तब के वक्त में न्यूज पोर्टल चलन में नहीं आये थे लेकिन वैकल्पिक मीडिया ने हमारी प्रेस-विज्ञप्ति का खूब इस्तेमाल किया. जाहिर सी बात है, सर्वे को 'विवादास्पद' बताया गया हालांकि किसी ने ऐसा कहने की वजह नहीं बतायी.

हमें फटकारने के अंदाज में कहा गया कि देखिए, ये लोग तो मानो ऐसा जता रहे हैं कि पत्रकार की जाति ही उसकी राय निर्धारित करती है. लेकिन, हमने ऐसा कहीं कुछ कहा ही नहीं था. हमने एक सीधी-सपाट बात कही थी कि: 'भारत के राष्ट्रीय मीडिया में सामाजिक विविधता का अभाव है, मीडिया में देश के विभिन्न सामाजिक वर्गों का सही प्रतिनिधित्व नहीं है.'

मुझे याद है कि दैनिक हिन्दुस्तान ने मृणाल पांडे के दस्तखत के साथ एक संपादकीय छापा. देश के सर्वाधिक प्रतिष्ठित संपादकों में नाम शुमार किया जाता है मृणाल पांडे का और संपादकों की वह सदाशयी पीढ़ी अब परिदृश्य से लगभग गायब हो चली है. दैनिक हिन्दुस्तान में छपे उस संपादकीय का शीर्षक था '*जाति ना पूछो साधु की*'. उन्होंने सदाशयता बरती और प्रतिवाद में मैंने उन्हीं के अखबार में हुई पक्षपाती रिपोर्टिंग के बारे में जो कुछ सबूतों के साथ लिखा था, उसे भी छापा.

किसी ने हमारे तथ्यपरक निष्कर्षों की काट नहीं की. कोई भी इसके बारे में नहीं बोला. और, किसी ने इस दिशा में कुछ किया भी नहीं.

साल 2006 से 2022: ज्यादा कुछ नहीं बदला

आइए, अब सीधे चले आते हैं साल 2022 के मुकाम पर. पिछले हफ्ते ऑक्सफैम इंडिया ने '*हू टेल्स अवर स्टोरीज मैटर्स: रिप्रेजेन्टेशन ऑफ मार्जिन्लाइज्ड कास्ट ग्रुप्स इन इंडियन मीडिया*' शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी की है. यह रिपोर्टों की सालाना कड़ी की चौथी रिपोर्ट है जिसकी शुरुआत 2019 में हुई. रिपोर्ट 'मीडिया रम्बल' नाम के जलसे में जारी की गई.

मुझे ये देखकर खुशी हुई कि ऑक्सफैम की रिपोर्ट का दायरा बड़ा है और उनकी सैंपलिंग भी हमारे पहले सर्वे की तुलना में कहीं ज्यादा व्यवस्थित है: ऑक्सफैम की रिपोर्ट में अखबार और टीवी चैनल्स के अतिरिक्त डिजिटल मीडिया के प्रतिष्ठानों को भी शामिल किया गया है. मुझे यकीन है कि आगे आने वाली रिपोर्टों में वे दायरे का विस्तार करते हुए 'क्षेत्रीय मीडिया' को भी शामिल करेंगे.

नेतृत्व वाले पद तथा उच्च स्तर के संपादकीय पदों की परिभाषा भी अब ज्यादा सटीक बन गई है. ऑक्सफैम की रिपोर्ट में टीवी के एंकर, पैनलिस्ट तथा वैसे पत्रकारों का भी विश्लेषण किया गया है जिनकी रिपोर्ट के साथ उनका नाम (बाय-लाइन) लिखा रहता है. रिपोर्ट के लिए आंकड़ें ज्यादा पारदर्शी तथा कठिन मेहनत से जुटाये गये हैं.

हां, ये देखकर मेरे दिल को धक्का लगा कि बड़ी तस्वीर पिछले पंद्रह सालों में जरा भी नहीं बदली. ऑक्सफैम की रिपोर्ट के मुताबिक नेतृत्व के पद पर (सभी श्रेणियों के लिए) काबिज 218 व्यक्तियों में से 88 प्रतिशत अगड़ी

जाति के हिन्दू हैं. (रिपोर्ट में जिसे जेनरल कैटेगरी यानी सामान्य श्रेणी कहा गया है, उसे मैंने यहां नया नाम दिया है क्योंकि ऑक्सफैम की रिपोर्ट में सामान्य श्रेणी की परिभाषा करते हुए तमाम धार्मिक अल्पसंख्यकों, एससी, एसटी तथा ओबीसी को शामिल नहीं किया).

दरअसल यह संख्या 90 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी बशर्ते आप आकलन से उन लोगों की संख्या को हटा दें जिन्होंने सर्वेक्षण के दौरान जवाब में कहा कि 'मालूम नहीं'. एससी, एसटी, तथा ओबीसी (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग) को एक साथ मिला दें तो इन वर्गों के सदस्यों की तादाद रिपोर्ट में 7 प्रतिशत बतायी गई है यानी आबादी के हिसाब से मीडिया के नेतृत्व के पदों पर इन वर्गों के लोगों की जितनी संख्या होनी चाहिए उसका दसवां हिस्सा. अगर आप मैगजीन और डिजिटल मीडिया को हटा दें तो फिर हमारे अंग्रेजी तथा हिन्दी के अखबारों और टीवी चैनल्स में इन तीन वर्गों के सदस्यों की संख्या नेतत्व के पदों पर एकदम से शून्य है.

मौजूदा सर्वे इस मामले में एक कदम आगे कहा जाएगा कि उसमें टीवी के एंकर, पैनलिस्ट तथा विभिन्न मीडिया-मंचों के बाय-लाइन वाले पत्रकारों की सामाजिक पृष्ठभूमि का आकलन और विश्लेषण किया गया है. आप इस सर्वेक्षण की सैकड़ों तालिकाओं को पढ़ते चले जाइए- यहां-वहां के चंद अपवादों को छोड़कर हर जगह बड़ी तस्वीर आपको एक सी मिलेगीः विश्लेषण की हर श्रेणी में हिन्दू समुदाय के अगड़ी जाति के सदस्यों की संख्या 70 से 80 प्रतिशत तक है (बशर्ते आप 'नहीं मालूम' कहने वालों की संख्या को हटा दें). यहां तक कि जाति से जुड़े मसलों की कवरेज के मामले में भी आपको यही तादाद देखने को मिलेगी.

तो इस तरह, बड़ी तस्वीर यह निकलकर सामने आती है कि देश की 20 प्रतिशत आबादी की आवाजें मीडिया के 80 प्रतिशत हिस्से पर काबिज हैं

और बाकी की 80 प्रतिशत आबादी की आवाज मीडिया के महज 20 प्रतिशत हिस्से तक सीमित है. मतलब, जैसा गोरे अंग्रेजों के शासन ने दक्षिण अफ्रीका में किया था हमने वैसा बिना रंगभेद की किसी औपचारिक नीति पालन किये ही कर दिखाया है.

मैं यहां ये बात रेखांकित करते चलूं कि अगड़ी जाति का हर मीडियाकर्मी ऊंची जाति की मानसिकता वाला हो— ऐसी बात कतई नहीं. जरूरी नहीं कि गोरी नस्ल का हर अंग्रेज अपनी मानसिकता में गोरी जाति की श्रेष्ठता-बोध की ग्रंथि पाले बैठा हो या फिर हर पुरुष, मर्दवादी अहंकार से ग्रस्त हो. फिर भी, क्या इसे एक संयोग मात्र माना जाये कि जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं की मीडिया में नाम-मात्र की कवरेज होती है?

क्या यह महज संयोग है कि सांप्रदायिक झगड़े-फसाद की घटनाओं की कवरेज जातिगत संघर्ष की घटनाओं की कवरेज की तुलना में नौ गुना ज्यादा होती है? क्या इसे संयोग माना जाये कि रोजमर्रा के तौर पर मीडिया में अल्पसंख्यकों को निशाना बनाती सुर्खियां लगती हैं? क्या इसे महज इत्तेफाक माना जाये कि जातिगत जनगणना के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर तकरीबन सर्व-सहमति सी बना ली गई है?

आज के वक्त में विदेश के पढ़े-लिखे अगड़ी जाति के अभिजन ने न्याय की ऐसी परिभाषा अपना ली है जो उधार की है और उसका संदर्भ पश्चिमी मुल्कों से जुड़ा है. हम आजकल इस बात की चिंता करने लगे हैं कि पैनल में बैठे सभी पुरुष ही थे. अगर किसी चर्चा में कोई अश्वेत ना शामिल हुआ हो तो हम इसे ओछेपन की दलील मानते हैं. लेकिन, यह बोध कभी हमारे भीतर बहुत गहरे नहीं उतरता, हम कभी उन विशेषाधिकारों के बारे में नहीं सोचते जो हमें भारतीय संदर्भ में जन्मना ही हासिल हो जाते हैं.

‘मैं तो अपनी जाति के बारे में जानता तक नहीं’- जैसी प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त भारत का अभिजन शायद ही कभी ऐसे मसलों पर कुछ और कहता-सोचता आपको मिलेगा. क्या भारतीय मीडिया आत्म-सुधार और आत्म-परिष्कार के लिए तैयार हो पायेगा? या हमें इंतजार करना होगा कि कोई मीडिया के बाहर से आये और मीडिया में पैठी जाति की जकड़बंदी को तोड़े?